हिन्दी अनुशीलन

(अंतरराष्ट्रीय सांदर्भिक शोध पत्रिका)

ISSN : 2249-930X - UGC Journal : 47913

प्रकाशक : डॉ0 निर्मला अग्रवाल, प्रबंधमंत्री, भारतीय हिन्दी परिषद्
हिन्दी–विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
Website- www.bhartiyahindiparishad.com
Email- hindianusheelan@gmail.com

मूल्य : रु0 100.00

अक्षर संयोजन : जितेन्द्र कुमार मिश्र, मो0– 09452365928
मुद्रक : नागरी प्रेस, अलोपीबाग, इलाहाबाद

अनुक्रम

विमर्श 7
– प्रो0 नंदकिशोर पाण्डेय

संवाद 17
– डॉ0 नरेन्द्र मिश्र

1. शिवपूजन सहाय और हिमालय 22
– डॉ0 मंगलमूर्ति

2. बिहार के महावीर आचार्य शिवपूजन सहाय 31
– डॉ0 कन्हैया सिंह

3. बाबू शिवपूजन सहाय का रचना विधान 35
– डॉ0 सभापति मिश्र

4. देवनागरी का सजग शिल्पी : शिवपूजन सहाय 42
– डॉ0 राजकुमार व्यास

5. जनचेतना और आंचलिक यथार्थ के कथा शिल्पी : आचार्य शिवपूजन सहाय 50
– डॉ0 धीरेन्द्र शुक्ल

6. पत्रकार /साहित्यकार –बाबू शिवपूजन सहाय 54
– डॉ0 निर्मला अग्रवाल

7. भारतीय संस्कृति एवं हिन्दी भाषा उन्नायक 68
– डॉ0 सरला पण्डया

8. देहाती दुनिया की आंचलिकता 72
– डॉ0 महीपाल सिंह राठौड़

9. आचार्य शिवपूजन सहाय की दृष्टि में हिन्दी उर्दू का रिश्ता 78
–डॉ0 राजेन्द्र कुमार सिंघवी

10. आचार्य शिवपूजन सहाय और उनका देहाती दुनिया 82
– डॉ0 राकेश नारायण द्विवेदी

11. शिवपूजन सहाय के भाषा संबंधी निबंधों का एक अध्ययन 87
– डॉ0 लाल सिंह पुरोहित

12. हिन्दी के नीलकंठी शिल्पी : आचार्य शिवपूजन सहाय 92
– डॉ0 राजेश कुमार

13. आचार्य शिवपूजन सहाय के साहित्य में मानव मूल्य 99
– डॉ0 पुष्पा रानी

14. साहसी 'मतवाला' संपादक : शिवपूजन सहाय 103
– सुप्रिया तिवारी

15. शिवपूजन सहाय के निबंधों में गांवों की यथार्थ–विवृति 107
–प्रो0 योगेन्द्र प्रताप सिंह

16. देहाती दुनिया : ठेठ देहात का चित्र 116
– डॉ0 गीता कपिल

17. देहाती दुनिया उपन्यास में व्यक्त लोक जीवन 120
– डॉ0 किरण शर्मा

18. शिवपूजन सहाय के संस्मरणों की विशेषताएँ 126
– प्रो0 हरदीप सिंह

19. पत्रकार शिवपूजन सहाय 135
–डॉ0 जया प्रियदर्शिनी शुक्ल

20. अपूर्व गद्य–सृजन–सामर्थ्य के धनी : शिवपूजन सहाय 140
– डॉ0 कृष्णगोपाल मिश्र

21. शिवपूजन सहाय द्वारा संपादित प्रमुख ग्रंथ एवं पत्र–पत्रिकाएँ 146
– डॉ0 हरेकृष्ण तिवारी

22. शिवपूजन सहाय का डायरी साहित्य 151
– डॉ0 अर्पणा

23. सांस्कृतिक युग पुरुषों के प्रबल पक्षधर : शिवपूजन सहाय 157
– डॉ0 रोहिताश्व कुमार शर्मा

24. गाँधी युग के मूर्धन्य हिन्दी पत्रकार : आचार्य शिवपूजन सहाय 161
– डॉ0 आद्याप्रसाद द्विवेदी

25. शिवपूजन सहाय के भाषणों में साहित्य व संस्कृति चिंतन 165
– डॉ0 नवीन नन्दवाना

26. शिवपूजन सहाय की कहानियाँ : कथ्य और शिल्प 176
– प्रो0 रामकिशोर शर्मा

27. हिंदी जगत् को आचार्य शिवपूजन सहाय का अवदान 183
– डॉ0 भरत सिंह

28. देहाती दुनिया : अपने–अपने भँवर 189
– डॉ0 लक्ष्मीनारायण भारद्वाज

29. भारतीय अस्मिता के सार्थवाह : कहानीकार शिवपूजन सहाय 199
– पूनम कुमारी

30. सर्जनात्मक भाषा का ठेठ–ठाठ : 'देहाती दुनिया' 209
– डॉ0 सत्यपाल तिवारी

31. शिवपूजन सहाय की साहित्य चिंता 216
– डॉ0 प्रभात कुमार मिश्र

32. स्त्री विमर्श का प्रवेश द्वार : भगजोगनी 225
– डॉ0 कंचन शर्मा

33. हिन्दी भांषा और शिवपूजन सहाय 231
– डॉ0 चन्द्रकान्त तिवारी

34. शिवपूजन सहाय की अमर कृति : 'देहाती दुनिया' 241
– प्रो0 हरीश कुमार शर्मा

179

रहकर क्षेत्र–विस्तार करती रहें। वे नागरी–प्रचारणी सभा के प्रति अधिक आकृष्ट थे। वह चाहते थे कि यह सभा हिन्दी और हिन्दी साहित्य का तीर्थ बने। पं० रामगोविन्द त्रिवेदी ने आचार्य शिवपूजन सहाय के स्वभाव का परिचय देते हुए एक स्थान पर लिखा है "शिवजी मजाक पसंद हास्य प्रिय और प्रसन्न व्यक्ति थे। उन्मुक्त हास्य करते–करते कमल की तरह खिल उठते थे। कभी कभी तो हँसते–हँसते अपने गुरु ईश्वरीप्रसाद शर्मा के समान लोट पोट हो जाते थे। उनकी दृष्टि विशद थी, हृदय–विशाल था।" सहाय जी दरिया दिल तो ऐसे थे कि अपने मतवाला–मण्डल के साथी स्व० मुंशी नवजादिक लाल की कन्याओं के विवाह के पीछे ऋणग्रस्त हो गये थे। निर्मल हृदय इतने थे कि किसी से बातें करते–करते उत्कट उत्कंठा के साथ बच्चों की तरह प्रश्न पर प्रश्न करने लगते थे। उनमें शीलता और शालीनता इतनी थी कि अपने सिद्धान्त का खण्डन सुनकर भी उत्तर तक नहीं देते थे। केवल खिन्न, विषण्ण और अवसन्न हो चुप्पी मार बैठते थे। वे किसी भी प्राणी को स्वप्न में भी दुख देना नहीं चाहते थे।"[3]

शिवपूजन सहाय जी को साहित्य और साहित्यकारों से कोई शिकायत नहीं थी। नाना प्रकार की झंझटों से लड़ते हुए भी वे मधुर और उदार थे। उनकी मृत्यु का समाचार सुनकर हिन्दी के मूर्धन्य आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कहा था "आचार्य शिवपूजन सहाय अत्यन्त निष्ठावान, सहृदय और निरन्तर कार्यरत रहने में विश्वास करने वाले महान साहित्यकार थे। कठिन परिस्थितियों में उन्होंने ऊँचे आदर्शों और साहित्यकार के गौरवपूर्ण आत्माभिमान को कभी झुकने नहीं दिया। उनकी सामूहिक सेवायें बहुमूल्य थी। वे नम्रता, शालीनता और कर्मठता के मूर्तिमान रूप थे।"[4]

आचार्य शिवपूजन जी की लेखनी शुचिता प्रसविनी थी। भाषा का प्रभाव और विषय का गांभीर्य उनके लेखों में कूट–कूट भरा है। आचार्य सहाय जी साहित्य स्रष्टा ही नहीं साहित्यकार निर्माता भी थे। वे उस आलोकवर्षी साहित्य–पीढ़ी के अप्रतिम पुरुष थे, जो आज इतिहास की वस्तु बन गयी है।

गाँधी युग के मूर्धन्य हिन्दी पत्रकार और साहित्यकार आचार्य शिवपूजन सहाय जी सच्चे अर्थों में हिन्दी–भूषण थे, जिनके साहित्यिक कृतित्व का स्वतंत्र अनुशीलन अपेक्षित है।

सन्दर्भ

1. धर्मयुग, 24 फरवरी 1963 ई० पृ० 44
2. हिन्दी साहित्य बंगीय भूमिका सं० डॉ० कृष्णबिहारी मिश्र, पं० रामव्यास पाण्डेय पृ० 157
3. नई धारा, जून 1952 पृ० 72 पं० रामगोविन्द द्विवेदी का निबन्ध
4. हिन्दी पत्रकारिता : जातीय चेतना और खड़ी बोली साहित्य की निर्माण भूमि ले० डॉ० कृष्णबिहारी मिश्र पृ० 410

मालतीकुँज
सिद्धार्थ एन्क्लेव विस्तार
एच0आई0जी0–2, 32, तारामण्डल
गोरखपुर–273017 मो0–9415632538

शिवपूजन सहाय के भाषणों में साहित्य व संस्कृति चिंतन

डॉ० नवीन नन्दवाना

हिंदी जगत में 'भाषा के जादूगर' के नाम से विख्यात शिवपूजन सहाय अपने उपन्यास 'देहाती दुनिया' से अपनी विशिष्ट पहचान रखते हैं। ऐसे विशेष रचनाकार का सामाजिक जीवन एक शिक्षक के रूप में प्रारंभ हुआ। आपके आरंभिक लेख और कहानियाँ 'मनोरंजन', 'लक्ष्मी', 'शिक्षा' और 'पाटलीपुत्र' पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई। हिंदी पत्रकारिता को लेकर भी आपका योगदान अविस्मरणीय है। आपने 'मारवाड़ी सुधार' (आरा), 'आदर्श', 'उपन्यास तरंग', 'समन्वय', 'माधुरी', 'गंगा', 'बालक' (दरभंगा), 'साहित्य' आदि पत्र–पत्रिकाओं के संपादन से भी आप जुड़े रहे।

'बिहार का विहार' (बिहार का भौगोलिक वर्णन), 'विभूति' (कहानी संग्रह), 'देहाती दुनिया' (उपन्यास, 1926) आदि आपकी चर्चित रचनाएँ हैं। 'ग्राम सुधार' तथा 'अन्नपूर्णा के मंदिर में' नामक पुस्तकों के माध्यम से आपने ग्रामोद्धार विषयक चिंतन को अभिव्यक्ति दी है। विविध संस्थाओं के कार्यक्रमों का सभापतित्व करते हुए आपने हिंदी साहित्य और संस्कृति को केंद्र में रखकर कई भाषण दिए जिनमें 'संसार भी एक पुस्तकालय है', 'ग्रामीण पुस्तकालय द्वारा लोकोपकार', 'पुस्तकालय ही असली विद्यालय है', 'हिंदी का साहित्यिक अभ्युदय और उत्कर्ष', 'हिंदी जगत की दो अनमोल विभूतियाँ' (रायकृष्णदास और मैथिलीशरण गुप्त), 'महाकवि अकबर' तथा 'बिहार की साहित्यिक प्रगति और समस्याएँ' भाषण विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

डॉ. नगेंद्र का अभिमत है कि– "शिवपूजन सहाय भाषा के जादूगर के रूप में ख्यात हैं। उनकी मस्ती और जिंदादिली उनके व्यक्तिगत निबंधों से फूट–सी पड़ती है– 'कुछ' शीर्षक निबंध संग्रह में उन्होंने तुच्छ से तुच्छ विषय को अपनी रोचक रचना प्रणाली से मोहक बना दिया है। उनके निबंध संख्या में अधिक नहीं हैं पर जो हैं वे उनकी आत्माभिव्यंजना, शिष्ट हास्य, मार्मिक व्यंग्य और औपचारिक किंतु परिष्कृत–परिमार्जित शैली के कारण हिंदी–निबंध–साहित्य में अपना विशेष स्थान रखते हैं।"[1] उनके भाषण भी पाठकों को आद्योपांत बाँधे रखते हैं।

छपरा (बिहार) के पोलतगंज नामक स्थान पर सार्वजनिक पुस्तकालय के प्रथम वार्षिकोत्सव के सभापति के रूप में 1941 में बोलते हुए शिवपूजन सहाय ने पुस्तकों की महत्ता का प्रतिपादन किया। 'यह संसार भी एक पुस्तकालय है' नामक भाषण के माध्यम से शिवपूजन सहाय पुस्तकों व पुस्तकालयों आदि की मानव जीवन से तुलना करते हैं। पुस्तकों के नए संस्करण की मनुष्य के पुनर्जन्म से तुलना करना अद्भुत है।

वे कहते हैं– "यदि हम सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो यह संसार भी एक प्रकार का पुस्तकालय ही है। इनका प्रत्येक प्राणी पुस्तक के समान है। पुस्तकों के संस्करण पूर्वजन्म के द्रष्टांत हैं। पुस्तकों के पन्ने खोलकर हम उनकी उत्तमता और निकृष्टता का परीक्षण करते हैं। प्राणियों का भी हृदय टटोलकर भले–बुरे की जाँच की जाती है। पुस्तकों के समाज में जैसे कोई महान आदर्श ग्रंथ उत्पन्न होकर संसार की विचारधारा पर प्रभाव डालता है, वैसे ही प्राणियों में भी कोई महान आत्मा आविर्भूत होकर संसार की प्रगति में सहायक होती है। यदि कोई विशेष प्राणी विशेष अवसर पर क्रांति द्वारा संसार चक्र की गति को परिवर्तित करता है तो पुस्तकें भी वैसा करने में समर्थ है, और पुस्तकों द्वारा की गई क्रांतियों के वर्णन संसार के इतिहास में भरे पड़े हैं।"[2]

इस प्रकार शिवपूजन सहाय ने अपने उद्‌बोधन के माध्यम से संसार को इस बात का संदेश दिया कि श्रेष्ठ पुस्तकें भी महापुरुषों से किसी भी प्रकार से कम नहीं होती हैं। एक महान पुरुष की भाँति वे भी संसार का कल्याण करती हैं।

वे आगे इस बात को समझाते हुए कहते हैं कि प्रकृति के प्रत्येक उपादान यथा– पर्वत, नदी, समुद्र, मरुस्थल और आकाश आदि भी वास्तव में पुस्तकालय के समान हैं। इनका अध्ययन सदियों से होता आया है और आगामी कई सदियों तक भी होता रहेगा। शिवपूजन सहाय ने अपने इस भाषण में वेदों का स्मरण करते हुए कहा कि 'संसार के पुस्तकालय का पहला ग्रंथ वेद ही हैं जिनका पठन–पाठन, चिंतन–मनन लोग सदियों तक करते रहेंगे।' वेदों की इसी विकास शृंखला में शास्त्र, स्मृति, उपनिषद, संहिता, पुराण आदि का विकास हुआ है। पुस्तकों को कंठस्थ करने की प्रक्रिया भी प्रारंभ हुई।

प्राचीन ज्ञान एवं ऋषि परम्परा का स्मरण करते हुए शिवपूजन सहाय कहते हैं कि प्राचीन भारत में एक गुरु स्वयं ज्ञान का अथाह भंडार था। वह एक व्यक्ति, एक पुस्तकालय के समकक्ष था जिससे अनेक विद्यार्थी ज्ञानार्जन करते थे। पुस्तक व पुस्तकालय की भारतीय ज्ञान परम्परा प्राचीन है। शिवपूजन सहाय लिखते हैं कि– "जो ग्रंथ पहले मौखिक थे, वे जब लिपिबद्ध होने लगे तब ज्ञान का क्षितिज विस्तृत हो चला। जो केवल एक की ही थाती थी, यह बहुतों की पूँजी बन गई। प्राचीन वैदिक और पौराणिक युगों के बाद इतिहास के बौद्ध युग में हम लोग हस्तलिखित ग्रंथों के कई संग्रहालयों अथवा पुस्तकालयों का वर्णन पढ़ते हैं। जगद्‌गुरु शंकराचार्य के मठों के अतिरिक्त इतिहास प्रसिद्ध राजाओं द्वारा स्थापित और संचालित विश्वविद्यालयों में कभी बड़े–बड़े ग्रंथागारों के होने का पता मिलता है। नालंदा के विराट पुस्तकालय का वर्णन पढ़कर ललाट में सिकुड़न पड़ जाती है। यहाँ तक कि मुसलमानी शासनकाल में भी हस्तलिखित पुस्तकों के ही संग्रहालय कहीं–कहीं पाये जाते थे। गुरुओं के घर में, या धनिकों के महल में, या बड़े विद्यालयों में ही पुस्तकालय होते थे।"[3]

मुद्रण कला के विकास ने इस ज्ञान संपदा के क्षेत्र को और भी विस्तृत कर दिया। सदियों से चिरसंचित ज्ञानसंपदा मुक्तहस्त से वितरित होने लगी। अपने इस भाषण में सहाय जी ने मुद्रण कला के बदलते स्वरूप, पुस्तकालयों की बदलती परम्परा और चल पुस्तकालयों की चर्चा करते हुए मानव जीवन को यह संदेश भी देते

हैं कि– "समय की प्रगति के साथ चलकर पुस्तकालय हमें बता रहा है कि परिवर्तनशील संसार में वही टिका रह सकता है, जो विकास की धारा के अनुकूल चल सके।"[4] पुस्तकालयों की परम्परा का स्मरण करते हुए शिवपूजन सहाय प्रस्तरयुग, ताम्रयुग, तालपत्र, भोजपत्र, और मुद्रणकला युग की चर्चा करते हुए भी कहते हैं कि पुस्तकालयों को विकसित होने की दिशा में अभी और यात्रा करनी है। इस भाषण में वे काशी–नागरी–प्रचारिणी सभा, आर्यभाषा पुस्तकालय (गदाधर सिंह), बिहार के 'आरा' स्थित नागरी प्रचारक पुस्तकालय, देश हितैषी आर्य–पुस्तकालय (1888, 1 अप्रैल) पं. किशोरीलाल गोस्वामी आदि का स्मरण करते हैं। अपने इस व्याख्यान में वे इस बात को भी प्रमुखता से कहते हैं कि– "पुस्तकालयों में जिस जाति या देश का अनुराग बढ़ता जाता है, उसकी उन्नति का प्रवाह कभी अवरुद्ध नहीं होता।"[5]

सहाय जी की भाषा अपनी विशिष्टता लिए है। वह सानुप्रासिक होते हुए भी कहीं भी भावों पर भारी नहीं पड़ती है। बच्चन सिंह सहाय जी की भाषा की तुलना निराला व उग्र जी की भाषा से करते हुए लिखते हैं कि– "शिवपूजन सहाय, पांडेय बेचन शर्मा उग्र और निराला तीनों 'मतवाला मंडल' के लेखक थे। सहाय जी भाषा के जादूगर माने जाते हैं। उनके निबंधों का एक संग्रह 'कुछ' नाम से प्रकाशित हो चुका है। उनकी भाषा में एक प्रकार का आभिजात्य मिलता है जबकि उग्र और निराला की भाषा में उच्छृंखलता। पर इन दोनों में सहाय जी की भाषा की अलंकृति और सानुप्रासिक पदावली की कृत्रिमता नहीं है।"[6]

04 अप्रैल, 1942 को सम्मेलन भवन (पटना) में आयोजित स्वागत समारोह जिसमें रायकृष्णदास और मैथिलीशरण गुप्त का स्वागत किया गया। इस समारोह के अध्यक्षीय भाषण में बोलते हुए शिवपूजन सहाय ने इन्हें 'आधुनिक हिदी जगत की दो अनमोल विभूतियाँ' बताया। उन्होंने इस अवसर पर कहा कि ये दोनों ही आधुनिक साहित्य के यशस्वी आचार्य द्विवेदी के यशस्तंभ हैं। "श्रीमान् रायकृष्णदास जी हिंदी संसार के एकमात्र कलाविद् और कलासंबंधी प्राचीन शोध के अद्वितीय मर्मज्ञ हैं। हिंदी संसार में भारतीय कला का ऐसा सूक्ष्मदर्शी एवं पारदर्शी तत्त्व दूसरा है ही नहीं। आपने कलादेवी के कमनीय चरणों पर सर्वस्व भेंट चढ़ाई है। भारतीय मूर्तिकला और चित्रकला पर आपकी जो पुस्तकें हिंदी में निकली हैं, केवल उन्हीं के सहारे हम आपको ठीक से परख नहीं सकते, आपके जीवन के प्रत्येक कण और प्रत्येक क्षण में कला रम गई है। हम आपके निकट कुछ काल रहकर ही यह समझ सकते हैं कि कला के अनुसंधान में आपका कैसा अनन्य अनुराग है।"[7] शिवपूजन सहाय का यह कथन रायकृष्णदास जी के कलानुराग और वैदुष्य को दर्शाता है।

अपने इस भाषण के द्वारा शिवपूजन सहाय ने रायकृष्णदास के गद्यकाव्य व आख्यायिकाओं में विद्यमान भाषा सौष्ठव, कल्पनाकौशल व भावसौकुमार्यता आदि की श्रेष्ठता को भी उद्‌घाटित किया है। अपने व्याख्यान द्वारा उन्होंने रायकृष्णदासजी को काशी नागरी प्रचारिणी सभा के भारत कला भवन, रोरिक के बहुमूल्य चित्रों को संग्रहण के जीवन सर्वस्व बताया। सहाय जी ने बताया कि आप जयशंकर प्रसाद के घनिष्ठ मित्र रहे हैं। आप (रायकृष्णदास जी) उन संस्मरणों की अद्‌भुत निधि हिंदी जगत को दे सकते हैं। व्याख्यान में उन्होंने दास जी द्वारा स्थापित भारती भंडार

प्रकाशन, पटना विश्वविद्यालय को आप द्वारा प्रदत्त साहित्य मणि मंजूषा का भी स्मरण किया।

"शिवपूजन सहाय का हिंदी के गद्य साहित्य में एक विशिष्ट स्थान है। इनकी भाषा बड़ी सहज है। इन्होंने उर्दू शब्दों का प्रयोग धड़ल्ले से किया है और प्रचलित मुहावरों के संतुलित उपयोग द्वारा लोकरुचि को स्पष्ट करने की चेष्टा की है। कहीं–कहीं अलंकरणप्रधान अनुप्रासबहुल भाषा का भी व्यवहार किया है और गद्य में पद्य की–सी छटा उत्पन्न करने की चेष्टा की है। भाषा के इस पद्यात्मक स्वरूप के बावजूद इनके गद्य लेखन में गांभीर्य का अभाव नहीं है। शैली ओजगुण सम्पन्न है और यत्र–तत्र उसमें वक्तृत्व कला की विशेषताएँ उपलब्ध होती हैं।"[8] सहाय जी का यह भाषण भाषा सौष्ठव व हिंदी जगत के दो विद्वानों को संपूर्णता में समझने की दृष्टि से विशिष्ट है। मैथिलीशरण गुप्त का स्मरण सहाय जी जिन शब्दों में करते हैं और जिस प्रकार तुलसी की परम्परा से जोड़ते हैं, वह प्रशंसनीय है। वे कहते हैं– "हमारे प्रोफेसर विश्वनाथ जी के शब्दों में यह सर्वथा सत्य है कि वाल्मीकि के अवतार जैसे तुलसी थे, वैसे ही तुलसी की 'गुप्त' मूर्ति आधुनिक हिंदी जगत में प्रकट हुई है। जिस प्रकार तुलसी की कवित्व शक्ति के पीछे रामभक्ति की साधना लगी हुई है, उसी प्रकार इनका काव्यकानन भी रामभक्ति कलकंठी के कलकूजन से कूजित हैं। जैसे 'विनयपत्रिका' लिखते समय तुलसी की लेखनी को हनुमान जी का सहारा मिलने की बात प्रसिद्ध है, वैसे ही यह कौन कह सकता है कि गुप्त जी की लेखनी से भी किसी अदृश्य शक्ति ने यह अमर पंक्ति नहीं लिखवाई 'भगवान भारत वर्ष में गूँजे हमारी भारती' जो वास्तव में अक्षरशः सार्थक हुई है। इनकी भारती की गूँज से हिंदी संसार का कोना–कोना मुखरित है।"[9]

सहाय जी, गुप्त जी के काव्य वैशिष्ट्य को उद्घाटित करने के लिए जिन शब्दों व वाक्यों– 'साकेत हमारे साहित्य का नंदन निकेत है।', 'इनमें रामभक्ति और राष्ट्रभक्ति का मणिकांचन संयोग है।', 'युगधर्म की पुकार', 'भारतीयता के उत्कर्ष का शंखनाद', 'शौर्य वीर और पौरुष पराक्रम की ओजस्विनी गाथा' जैसे शब्दों, वाक्यों व वाक्यांशों का प्रयोग भाषा में विशिष्टता भरता है। निश्चय ही इस भाषण को पढ़ते हुए हम आज भी आद्योपांत बंधे रहते हैं तो जिन्होंने सहाय जी के मुखारविंद से स्वयं सुना होगा उनके हृदय सागर में रसवंती सरिता ने अवश्य हिलोरें ली होंगी।

बिहार के चंपारन जिले के परोरहा–केहुनिया (लोरिया) के श्रीज्ञानप्रकाश–पुस्तकालय के तीसरे वार्षिकोत्सव के सभापति के रूप में 10 जून, 1944 को दिए गए अपने भाषण में शिवपूजन सहाय 'ग्रामीण पुस्तकालय द्वारा लोकोपकार' का संदेश देते हैं।

भाषण के प्रारंभ में ही देश की दशा पर विचार करते हुए बताते हैं कि हमारे देशवासियों में कुछ अच्छा करने के विचार उत्पन्न हो रहे हैं, पुस्तकालयों की स्थापना व प्रचार भी उन विचारों में से एक है। सहाय जी को इससे इस बात का संतोष है कि यह विचार देश में विद्यानुराग जगाकर ज्ञान की ज्योति प्रसारित करेगा। तुलसी का स्मरण करते हुए वे पुस्तक एवं पुस्तकालयों की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए अपने भाषण में उन्होंने कहा था– "गोसाई तुलसीदास जी का शरीर हमारी आँखों से ओझल हो गया है। पर उनकी असली आत्मा तो हमारी आँखों के सामने हर घड़ी

खड़ी रहती है। पर हम तो ऐसे अभागे हैं कि कल्पवृक्ष की छाया में रहकर भी दरिद्र बने हुए हैं। यदि केवल 'रामचरितमानस' अर्थात् तुलसीकृत रामायण ही हम प्रेम से पढ़ा करें तो लोक–परलोक दोनों बन जाएँगे। लौकिक व्यवहार की कोई बात उसमें छूटी नहीं है। परलोक सँवारने का सबसे सुगम रास्ता उसी में है। तुलसी का 'मानस' अकेला ही अनेक पुस्तकालयों का काम कर सकता है।"[10] इस प्रकार सहाय जी ने जीवन निर्माण में पुस्तक संस्कृति की महती भूमिका को दर्शाया है। उन्होंने मानस की महत्ता के माध्यम से यह दर्शा दिया कि पुस्तकें न केवल इहलौक बल्कि परलोक सुधारने का कार्य भी करती हैं।

उन्होंने इस बात पर चिंता व्यक्त की कि घर–घर में 'मानस' की पोथी तो है किंतु राम व भरत जैसे भाई सौ में से एक आध ही दिखाई पड़ते हैं। साथ ही यह संदेश भी दिया कि राम के सौंदर्य पर रीझने के साथ–साथ उनके आदर्शों को भी जीवन में उतारना चाहिए। पुस्तकालयों व पुस्तकों की महत्ता पर बोलते हुए उन्होंने कहा कि पाठक गुणग्राही सूप की तरह होना चाहिए। वे कहते हैं कि– "पुस्तकालय से लाभ तभी होगा जब उसकी पुस्तकों का प्रभाव हमारे मन पर पड़ेगा। पुस्तकालय तो हमारे शारीरिक और मानसिक सुधार का एक अच्छा साधन है। उसमें बैठकर हम वाल्मीकि और व्यास की विचारधारा में नहा सकते हैं। उसमें जाकर हम प्रेम और सेवा का प्रसाद पा सकते हैं।"[11]

अपने व्याख्यान में शिवपूजन सहाय ने ग्रामीण पुस्तकालयों में पुस्तकें चयन करने के लिए भी आधार बताए हैं। उन्होंने कहा कि धर्म, अध्यात्म, कृषि, सामान्य घरेलू उपचार आदि विषयों को ध्यान में रखते हुए पुस्तकें क्रय की जानी चाहिए। उनका मानना है कि एक अच्छा पुस्तकालय एक साथ कई उद्देश्यों की पूर्ति करता है। 'एकहि साधे सब सधे' वाली उक्ति इस प्रकार चरितार्थ की जा सकती है।

बिहार के पटना जिले के हिलसा नामक स्थान पर स्थित श्रीअन्नपूर्णा–पुस्तकालय के तृतीय वार्षिकोत्सव का सभापतित्व करते हुए 24 फरवरी, 1946 को श्री शिवपूजन सहाय ने 'पुस्तकालय ही असली विद्यालय है' विषय पर बोलते हुए कहा कि पुस्तकें केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं होती हैं। पुस्तकों को पढ़ने का वास्तविक लाभ तभी होगा जब उसमें निहित विचार बिंदु को हम अपने जीवन में उतारें। उस पर गंभीर चिंतन–मनन करें। जैसे कि तह तक जाने पर हमें मोती मिलते हैं, मात्र ऊपर–ऊपर तैरने पर नहीं, ठीक वैसे ही पुस्तकों को पढ़ने मात्र से नहीं, विचार व मनन से ही हम उसका वास्तविक लाभ ले सकते हैं। शिवपूजन सहाय ने इस भाषण के द्वारा चिंता व्यक्त की है कि– "हमारे यहाँ मननशील पाठकों का बहुत अभाव है, इसलिए पुस्तकालयों के बढ़ते जाने पर भी हमारे जीवन में, परिवार में, समाज में अभ्युदय के स्पष्ट लक्षण नहीं दीख पड़ते। पारस्परिक सद्भाव का आज भी अभाव सर्वत्र ही है। सामाजिक कुप्रथाएँ अब भी हमारे चारों ओर मंडरा रही हैं। चरित्र की उच्चता हृदय की स्वच्छता, वाणी की मधुरता, व्यवहार में शिष्टता और सच्चाई बहुत ही कम दिखाई देती है। हम लोग सौ–सौ पुस्तकें चाट जाते हैं मगर सच्चे मनुष्य नहीं बन पाते।"[12] अतः पुस्तकों को मात्र आद्योपांत पढ़कर नहीं छोड़ देना चाहिए अपितु उन पर मनन भी करना चाहिए।

अपने इस भाषण में उन्होंने पुस्तकों के संरक्षण पर भी बल दिया। उन्होंने अंग्रेजों द्वारा पुस्तकों को सुरक्षित रखने के व्यवहार की भी तारीफ की। साथ ही बताया कि पुस्तकों के प्रथम संस्करण पर पुस्तकालयों की प्रतिष्ठा निर्भर करती है। साथ ही पत्रिकाओं के विशेषांक व दुर्लभ अंक भी उसकी शोभा बढ़ाते हैं। पुस्तक या पत्रिका को नुकसान पहुँचाने वालों से भले ही हम अर्थ दंड स्वरूप कुछ धनराशि ले लेते हैं किंतु उस राशि द्वारा भी हम वह दुर्लभ अंक वापस नहीं जुटा सकते हैं। सहाय जी ने बताया कि पुस्तकालय देश व समाज को अविद्या के अंधकार से बचाते हैं। इनके माध्यम से हम जनजागरण का कार्य भी कर सकते हैं। उन्होंने संदेश दिया कि– "जो धनी–मानी दानी पुरुष हैं, वे देश हित का ध्यान रखते हुए अपने धन का उपयोग समयानुकूल रीति से करें। अब मंदिर बनवाकर परलोक संवारने की चिंता छोड़ें। मंदिर काफी बन चुके, और उनमें से अधिकांश राजभोग की उचित व्यवस्था न करके काफी लोग स्वर्ग के धोखे नरक जा चुके। बस, अब सरस्वती मंदिरों की ही जरूरत है। धनी धोरी धर्मात्मा अब युगधर्म पहचाने, परलोक से पहले इहलोक सुधारें।"[13] इस प्रकार अच्छी पुस्तकें मनुष्य के जीवन में बड़ा बदलाव ला सकती हैं। यही संदेश उन्होंने अपने इस भाषण के माध्यम से दिया है।

उर्दू–लिटरेरी सोसायटी, राजेंद्र कॉलेज, छपरा के वार्षिकोत्सव में हिंदी लिटरेरी सोसायटी की ओर से शिवपूजन सहाय द्वारा 'महाकवि अकबर' विषय पर भाषण दिया गया जो बाद में 1945 ई. में राजेंद्र कॉलेज की पत्रिका में भी प्रकाशित हुआ। इस भाषण की शुरुआत में ही सहाय जी ने हिंदी–उर्दू भाषाओं पर गंभीरता से विचार व्यक्त किए हैं। उन्होंने बताया कि हिंदी व उर्दू दोनों सगी बहनों की तरह हैं किंतु इस बात पर चिंता भी होनी चाहिए कि जिस तरह हिंदी ने उर्दू को स्वीकारा है, उर्दू ने उस भाँति हिंदी को गले नहीं लगाया है। अपनी इस बात की पुष्टि के लिए उन्होंने कहा कि– "इतना ही नहीं अगर आप हिंदी के अखबारों को देखें, आपको उर्दू के शायरों का जिक्र जरूर मिलेगा, उनकी शायरी भी मिलेगी। आप हमारे प्रसाद, पंत, द्विज और दिनकर को नहीं जानते; मगर हम अपने अखबारों के सहारे यह खूब जानते हैं कि 'जिगर मुरादाबादी', 'हजरत अजीज' और 'चकबस्त' लखनवी, 'हजरत रियाज', खैराबादी, 'जोश' मलीहाबादी, 'सीमाब' अकबराबादी और 'बिस्मिल' इलाहाबादी कौन हैं, क्या हैं और कैसे हैं।"[14]

उन्होंने बताया कि हिंदी वालों में उर्दू की शायरी का मजा लेने का शौक पैदा हो गया है, 'चांद' व 'कर्मयोगी' से इस बात की पुष्टि हो सकती है। आज उर्दू के प्रत्येक अच्छे शायर को अच्छी तरह जानते हैं। "इसकी वजह और कुछ नहीं, उर्दू की शायरी में सादगी के अंदर जो खूबसूरती है, वही हिंदी वालों के लिए चितचोर बन रही है। साफ–सुथरी भाषा में सुलझे हुए खयाल, गहरी पैठ की सूझ, कहने के निराले ढंग और दिल की तह तक गोते लगाने वाले भाव ऐसे अनूठे होते हैं कि कोई भी दिल रखने वाला ऐसा पुतला नहीं, जो सुनकर झूम न उठे।"[15] अपने इस विचार की पुष्टि के लिए 'गालिब', 'दाग', 'मीर', तकी आदि की शायरी सुनाई। साथ ही संदेश भी दिया कि उर्दू वालों को भी पड़ोसिन हिंदी की ओर अपनी निगाह डालनी चाहिए। इससे आपसी लेन–देन का अवसर तो बढ़ेगा ही, आपस की खाई भी पट जाएगी। "हम–आप दूध–मिसरी की तरह घुल–मिलकर हिंदुस्तान की ताकत बढ़ा सकते हैं। मेरा अपना खयाल है कि साहित्य ही, लिटरेचर ही हम लोगों के दिलों को मिलकर

मुल्क की सच्ची भलाई कर सकता है।"[16] अकबर इलाहाबादी का स्मरण करते हुए वे उनका एक शेर याद करते हैं–

"तुझे हम शायरों में क्यों न अकबर मुन्तखब समझें।
क्यूँ ऐसा कि दिल माने, जबाँ ऐसी कि सब समझें।।"[17]

सहाय जी ने अकबर के कई ऐसे काव्यांगों को उद्धृत करके उनके ह्यूमर (भउवनत) के हुनर को भी उद्घाटित किया है। महाकवि अकबर ने नकल की प्रवृत्ति, आरामतलब नेताओं, गोरे हाकिमों से मिलने की हिचक को भी आवाज दी है। सहाय जी कहते हैं कि जिसे ओहदे व खिताबों की ख्वाहिश नहीं होती वही व्यक्ति साफ शब्दों में अपनी बात कह सकता है। "बेशक उनके दिल अपने मुल्क के लिए आह थी, आग थी, लगन थी, कसक थी, सच्ची हमदर्दी थी। इसलिए उनको अपने ओहदे में इजाफा होने की कोई उम्मीद नहीं थी। दिल में खिताबों की ख्वाहिश भी नहीं थी। तभी तो कहते हैं–

"मेरी नाकामयाबी की कोई हद हो नहीं सकती।
सदाकत चल नहीं सकती, खुशामद हो नहीं सकती।।"[18]

अकबर के व्यक्तित्व का वैशिष्ट्य उद्घाटित करते हुए वे कहते हैं कि अकबर को सरकार, सोसायटी, लीडर आदि में कोई खामी देखते तो उसे कहने में हिचकिचाते भी नहीं थे। हिंदू–मुस्लिम एकता के वे बड़े पक्षधर थे। "गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न। बन्दौं सीताराम पद जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न।।" का स्मरण करते हुए शिवपूजन सहाय ने जयपुर (राजस्थान) में 1944 ई. में आयोजित अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन के 32वें महाधिवेशन की 'साहित्यिक परिषद' के सभापति के रूप में अपने भाषण की शुरुआत की। उनका यह व्याख्यान 'हिंदी का साहित्यिक अभ्युदय और उत्कर्ष' विषय पर केंद्रित था। अपने व्याख्यान के आरंभ में ही सहाय जी हिंदी के अनेक रचनाकारों व पत्रिकाओं के संपादकों व पत्रकारों का स्मरण करते हुए कहा कि– "किंतु आश्चर्य है कि ऐसे यशस्वी एवं मनस्वी पत्रकारों के रहते हुए भी अनेक क्षेत्रों में हिंदी का पक्ष अभी यथेष्ट सबल नहीं है। हम तो यही आशा रखते हैं कि देश की राजनीतिक समस्याओं के साथ–साथ ये हमारी सांस्कृतिक समस्याएँ सुलझाने में भी दत्त रहा करेंगे। पर खेद है कि हमारी यह आशा पर्याप्त रूप से पूरी नहीं हो पाती। भाषा की रूप–रेखा संवारने–सुधारने में, शब्दों के शुद्ध रूप स्थिर करने में, शब्द शुद्धि के लिए अक्षरों के उपयुक्त प्रयोग में हिंदी पत्रकारों का सामूहिक सहयोग बड़ा लाभदायक हो सकता है। भाषा और लिपि की समस्याएँ इनका मुँह जोह रही हैं। ये चाहें तो साहित्य–सम्मेलन, नागरी–प्रचारिणी सभा और लेखकों तथा जनता को सदा सजग रख सकते हैं। संगठन का अमोघ अस्त्र पाकर भी यदि ये बिखरी शक्तियों को समेट न सके तो दूसरा कौन है जो हिंदी को सनाथ कर सकेगा ?"[19]

सहाय जी ने चित्रपट, रेडियो व विज्ञापन के बढ़ते प्रभाव का भी स्मरण अपने इस भाषण में किया। व्याख्यान द्वारा सहाय जी ने पत्रकारों की संघशक्ति की भी आवश्यकता बताई। साथ ही उन्होंने निरवलंब साहित्य–सेवियों व उनके असहाय परिवारों की सहायता की तरफ भी सभी का ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने इस बात पर भी चिंता व्यक्त की कि– "हमारे साहित्य–सेवियों की स्मृति रक्षा की समस्या तो अतिशय महत्त्वपूर्ण है। यहाँ प्रसंगवश बड़े क्लेश के साथ कहना पड़ता है कि हमारे

381

कितने ही साहित्य–सेवियों के स्वर्गीय होने पर अनेक पत्र–पत्रिकाओं में तो संवेदना के दो शब्द भी नहीं निकलते। यदि अतिशयोक्ति न समझी जाए, तो यहाँ तक कहने का साहस कर सकता हूँ कि पत्र के किसी फालतू कोने में दो–चार पंक्तियों का संक्षिप्त समाचार प्रकाशित करके ही कर्तव्य की इतिश्री कर दी जाती है। शरदचन्द्र और रवींद्र के निधन के दूसरे ही दिन भोर में हमने दैनिक 'आनंद–बाजार–पत्रिका' और 'वसुमती' के बीस–बीस सुदीर्घ पृष्ठों को नखशिख शोक निमग्न देखा ; पर अपने 'प्रेमचंद' और 'प्रसाद' के लिए हमें अनेक पत्रों में अग्रलेख तक पढ़ने को नहीं मिले ! क्या हमारी छाती को छलनी कर जाने वाले ये महारथी केवल दस पंक्तियों के अधिकारी थे?''[20] गणपति चंद्र गुप्त ने सहाय जी के निबंधों के वैशिष्ट्य का वर्णन करते हुए भी लिखा है कि– ''बाबू शिवपूजन सहाय के विभिन्न साहित्यिक एवं समीक्षात्मक निबंध प्रकाशित हुए हैं। जिनमें सर्वत्र संभाषण शैली का–सा प्रवाह उपलब्ध होता है।''[21] यही प्रवाह हम उनके भाषणों में भी महसूस करते हैं।

व्याख्यान में सहाय जी ने बहुत–सी दिवंगत आत्माओं और जीवित विभूतियों का स्मरण करते हुए बताया कि पंडित कृष्णकांत मालवीय, बाबू महावीर प्रसाद गहमरी, पं. दशरथ प्रसाद द्विवेदी आदि के योगदान को भी हम विस्मृत कर रहे हैं। पत्रकारों के पास असीमित शक्ति है। सहाय जी ने अपने इस भाषण द्वारा यह भी दर्शाया है कि साहित्य के अभ्युदय के लिए लेखकों के शांतिपूर्वक जीवनयापन का सुयोग स्थापित करना भी आवश्यक है। पत्रकारों व प्रकाशकों से उन्हें इस निमित्त उपयुक्त सहयोग मिलना चाहिए। साहित्यकारों के जीवन यथार्थ व संघर्ष को उद्घाटित करते हुए अपनी बात सोदाहरण स्पष्ट करते हैं– ''हम लोग पं. शांतिप्रिय द्विवेदी की साहित्य–सेवा से अच्छी तरह परिचित हैं। यदि उनकी लेखनी जीविका के जंजाल में न फंसी होती तो उनकी प्रतिभा का जौहर और भी अधिक खुलता। मध्यप्रदेश की ऊर्वर भूमि का वह ललित पौधा श्री रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', तो हिंदी–माता के अंचल का एक सुरभित सुकुमार सुमन है और जिसे देख–देख हिंदी–माता का दृगांचल आनंदाश्रु–सिक्त होता होगा, क्या पर्याप्त पोषण और प्रोत्साहन पाकर साहित्योद्यान की और अधिक शोभा न बढ़ाता ? ऐसे कितने ही फूल विकट परिस्थितियों की लू–लपट में झुलसकर बिना खिले ही मुरझा गए। यदि हम उनके विकास में सहायक होते तो मातृमंदिर की पूजा कितनी सुहावनी होती, यह सहज ही अनुभवगम्य है।''[22] इन विषम स्थितियों में भी सहाय जी लेखकों से आह्वान करते हैं कि वे हिंदी–माता की सच्ची साधना में तत्पर रहें।

सहाय जी ने ग्रामजीवन के सहारे साहित्य सर्जना का मार्ग भी सुझाया। शहरी चकाचौंध से दूर रहते हुए वे कुछ गाँवों का मंडल बनाकर रचनात्मकता को बढ़ावा दे सकते हैं। सहाय जी ने कहा कि सम्यक ज्ञान, सुंदर प्रयोग, लोक हिताय और लोक रंजनाय का ध्यान रखकर रचना कर्म में संलग्न होना होगा। साहित्य के क्षेत्र में अनियंत्रित भावनाओं की बाढ़ पर नियंत्रण लगाना होगा। हमें प्रकाशनों की संख्या बाहुल्य मात्र पर फूलना नहीं चाहिए बल्कि गुणात्मकता को भी सदैव ध्यान में रखना चाहिए। अपने इस भाषण के माध्यम से उन्होंने बताया कि रचनाकारों को अपनी रचनाओं में क्लिष्टता लाने से बचना चाहिए। साथ ही कई पत्रिकाओं, संपादकों एवं रचनाकारों का स्मरण करते हुए उन्होंने इस बात पर भी चिंता व्यक्त की कि इतने सारे साहित्य मर्मज्ञों व सहृदय समालोचकों के रहते हुए भी यदि भाषा व साहित्य के

दोषों का मार्जन न हुआ तो बड़ा पीड़ाकारी होगा। उन्होंने हमारी आलोचना पद्धति के लिए भी स्पष्ट रूप से कहा कि– ''हिंदी में समालोचना के आदर्श का निरूपण बहुत सोच–समझकर किया जाना चाहिए। हमारे समालोचक के लिए विदेशी साहित्य के समालोचन–सिद्धांतों की जानकारी के साथ–साथ स्वदेशी साहित्य की आलोचना पद्धति का भी परिज्ञान आवश्यक है। आजकल यह बहुधा देखने में आता है कि हमारे साहित्य के इतिहास में, हमारी विचार प्रणाली में, हमारी आलोचना शैली में विदेशी रंग का चटकीलापन बढ़ता जा रहा है। हम विदेशों के साहित्य की कसौटी पर ही अपने साहित्य को भी परखते हैं। विदेशी साहित्यिकों के बहुरूपिया सिद्धांतों ने हमारे साहित्य को इस तरह ग्रस लिया है कि उसके सांस्कृतिक महत्त्व का भी लोप हो जाने की आशंका–सी होने लगी है। हमें विदेशी साहित्य की महत्ता का प्रशंसक अवश्य होना चाहिए ; पर हमें अपने घर के साहित्य का निरीक्षण करने के लिए आँखों पर विदेशी साहित्यिकों का चश्मा नहीं चढ़ाना चाहिए।''[23]

सहाय जी ने साहित्य जगत में आ रही नवीन प्रवृत्तियों का स्वागत करते हुए कहा कि हमें किसी का पक्ष या विरोध करने से पहले सकारण उसकी समीक्षा करनी चाहिए। प्रगतिवाद के आगमन पर विविध साहित्यिकों ने उपजे विवाद को ध्यान में रखते हुए उन्होंने स्पष्ट कहा है कि– ''आजकल हम देखते हैं कि कुछ लोग इधर आवेशपूर्ण चित्त से प्रगतिशील भाइयों को कोसते नजर आते हैं और उधर कुछ हमारे प्रगतिवादी बंधु भी अमर्यादित बातें अनियंत्रित रीति से कहकर लोगों का मन खट्टा कर रहे हैं। किसी नूतन संप्रदाय का प्रवर्तन आमर्ष–आक्रोश के बल पर नहीं हो सकता और न हम रोष या असंतोष व्यक्त करके किसी अभिनव प्रवृत्ति का तिरस्कार ही कर सकते हैं। साहित्य में मधुर मतभेद की शोभा हो सकती है; पर ईर्ष्या–द्वेष और पक्षपात–प्रपंच की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती, न ही होनी चाहिए। साहित्य की प्रतिष्ठता और पौष्टिकता तभी बनी रह सकती है, जब उसकी रीढ़ भारतीय संस्कृति पर आघात न पहुँचे।''[24] भारतीयता की परम्परा का स्मरण करते हुए वे हरिऔध, गुप्त, गोपालशरण, सनेही, माखनलाल चतुर्वेदी, अनूप, रामनरेश त्रिपाठी, हरदयाल सिंह, गुरुभक्त सिंह, सुभद्राकुमारी, जयशंकर प्रसाद, निराला, महादेवी, पंत, बच्चन, दिनकर, वियोगी, अंचल, रामकुमार वर्मा, उदयशंकर भट्ट, मिलिंद, हरिकृष्ण प्रेमी, नरेंद्र, नवीन, द्विज, प्रभात, शिवमंगल सिंह सुमन, श्यामनारायण पांडेय, सोहनलाल द्विवेदी, अज्ञेय, गिरीश, केसरी, चोंच, बेढ़ब बनारसी आदि का स्मरण करते हुए हिंदी के मनोरम बाग की रखवाली का दायित्व 'हिंदी साहित्य सम्मेलन' को देते हैं। वे बताते हैं कि साहित्य का यह उद्यान वैभवपूर्ण है, निराश होने का कोई विषय नहीं बनता। संदेश दिया कि कविता, कहानी, नाटक की दिशा में साहित्य ने बहुत श्रीवृद्धि प्राप्त की है किंतु निबंध, आलोचना व अन्य कथेतर गद्य की दिशा में अभी बहुत संभावनाएँ हैं। इस प्रकार अपने इस भाषण के द्वारा शिवपूजन सहाय ने हिंदी साहित्य के वैभवपूर्ण संसार और उसके वैशिष्ट्य का वर्णन करते हुए नए मार्गों की ओर हमारा ध्यान खींचा है।

बिहार–प्रादेशिक–हिंदी–साहित्य सम्मेलन के 17वें अधिवेशन के सभापति के रूप में 05 फरवरी, 1941 को दिए गए अपने भाषण में शिवपूजन सहाय ने 'बिहार की साहित्यिक प्रगति और समस्याएँ' विषय को केंद्र में रखा। भाषण के प्रारंभ में वे अपनी दिवंगत पत्नी का स्मरण करते हैं जिसकी यह चाह थी कि वे सम्मेलन के सभापति के रूप में अपनी बात कहें, जो उनके जिंदा रहते नहीं हो पाई। जिसे सहाय जी ने

उनके स्वर्गस्थ होने के ढाई महीने बाद स्वीकारा। इस कारण आज इस पद से बोलते हुए उनका हृदय विदीर्ण हो रहा था। उनके स्मरण के पश्चात उन्होंने विगत दो वर्षों में स्वर्गीय हुए साहित्यकारों का स्मरण किया। सर्वप्रथम उन्होंने आचार्य रामचंद्र शुक्ल का स्मरण किया जो इस व्याख्यान के चार दिन पूर्व ही कैलाशवासी हो गए। यहाँ उन्होंने सम्मेलन के आदिसूत्रधार पं. जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी व बिहार के ब्रजभाषा के प्रतिनिधि कवि पं. अक्षयवट मिश्र 'विप्रचंद' का भी पावन स्मरण किया।

बिहार के वयोवृद्ध साहित्यसेवियों का स्मरण करते हुए उन्होंने अनेक साहित्य रससिक्त जीवन पर वृत्तांत लिखवाने का संदेश दिया। बाबू शिवनंदन सहाय का स्मरण करते हुए उन्होंने बताया कि हमने उनके योगदान को याद रखते हुए उनके प्रति क्या किया है ? जिन्होंने अपने जीवनकाल में ही बिहार के इतिहास पर प्रकाश डालने वाली सामग्री लिपिबद्ध कर ली थीं। पं. जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी के पुत्र द्वारा उन पर स्मारक ग्रंथ, श्रीरामलोचनशरण जी की स्वर्ण जयंती पर स्मारक ग्रंथ, श्री गदाधर प्रसाद अम्बष्ठ द्वारा 'बिहार दर्पण' ग्रंथ निकालने पर उन्होंने खुशी व्यक्त की।

बिहार के साहित्य पर सुझाव देते हुए सहाय जी कहते हैं कि इस सम्मेलन के भूतपूर्व सभापतियों व स्वागताध्यक्षों के भाषणों को पुस्तकाकार करवाकर हम बिहार के साहित्य के विकास क्रम को समझ सकते हैं। यह कार्य यदि समय रहते नहीं करवाया गया तो वे भाषण लुप्तप्राय हो जाएँगे। सम्मेलन के पूर्व अध्यक्षों की स्मृति में 'रामरणविजय व्याख्यानमाला', 'रामदीन स्मारक संग्रहालय', 'प्रो. सकलनारायण शर्मा' की रचनाओं का प्रकाशन होना चाहिए। ऐसे ही अन्य रचनाकारों व रचनाओं के प्रकाशन व संरक्षण पर भी सहाय जी ने अपने भाषण में चिंता व्यक्त की जो कि साहित्य व साहित्यकारों के प्रति उनके स्नेह को दर्शाता है। वे एक महत्त्वपूर्ण सुझाव देते हैं कि– "मैं तो बड़ी आस्था के साथ उस सुदिन की ओर टक बाँधे हूँ, जब इस भारती भवन में, आपके ही समुचित सहयोग से, हिंदी का एक विशाल ग्रंथ भंडार होगा। अपूर्व साहित्यिक वस्तुओं का आलोकप्रद संग्रहालय होगा। तब आप इसमें अपने प्रांत की विभूतियों के दर्शन कर सकेंगे, तब आप इसमें बड़े चाव से देखने आया करेंगे। बिहार के पुराने हिंदी लेखकों की अप्राप्य पुस्तकें, उनके चित्र, उनकी चिट्ठियाँ, बिहार की समाधिस्थ पत्र–पत्रिकाएँ और बिहार की कलाकृतियाँ।"[25] अपने इस व्याख्यान में वे बिहार के कई साहित्यकारों व उनके अवदान का स्मरण करते हैं। वे न केवल साहित्यकारों के स्मरण से अपनी बात पूरी कर लेते हैं बल्कि प्रकाशकों यथा– पुस्तक भंडार, ग्रंथमाला कार्यालय, युगांतर साहित्य मंदिर, नवशक्ति प्रकाशन मंदिर, सरस्वती–साहित्य–सदन, किताब–घर का भी स्मरण करते हैं। ऐसे ही कई साहित्यिक पत्र–पत्रिकाओं की लंबी श्रृंखला व योगदान भी रेखांकित करते हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि हिंदी जगत में 'भाषा के जादूगर' के नाम से विख्यात प्रसिद्ध साहित्यकार शिवपूजन सहाय ने अपने विविध भाषणों के माध्यम से हिंदी जगत के विविध पक्षों, रचनाकारों के अवदान, पत्र–पत्रिकाओं के योगदान के साथ–साथ प्रकाशकों से जुड़े विभिन्न मुद्दों की भी गंभीरता से पड़ताल करते हुए हमारा मार्गदर्शन किया है। पुस्तक, पुस्तकालय को लेकर उनके मन में बड़े ही पवित्र विचार थे जिनको उन्होंने अपने विविध भाषणों के माध्यम से व्यक्त किया है। कवि अकबर के स्मरण के माध्यम से वे हिंदी–उर्दू के संबंधों पर भी प्रकाश डालते हैं। हिंदी के अभ्युदय व उत्कर्ष का स्मरण करते हुए वे रचनाकारों व प्रकाशकों को अपने

कर्तव्य का भी स्मरण कराते हैं। साथ ही हिंदी की विविध साहित्यिक विभूतियों का स्मरण करते हुए साहित्यिक संस्थाओं को उनके साहित्य के संरक्षण व प्रचार–प्रसार का दायित्व भी देते हैं। बिहार की साहित्यिक प्रगति पर भी वे एक विशेष प्रकार का चिंतन अपने व्याख्यान के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार उनके भाषण हमें हिंदी के रचनाकारों, रचनाओं, पुस्तकालयों व संस्थाओं आदि के विषय में हमारा विशिष्ट मार्गदर्शन करते हैं।

संदर्भ सूची

1 डॉ. नगेंद्र (सं.), हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैक्स, नौएडा, 2000, पृष्ठ 587
2 शिवपूजन सहाय ग्रंथावली, खंड 4, पृष्ठ 147
3 शिवपूजन सहाय ग्रंथावली, खंड 4, पृष्ठ 14
4 शिवपूजन सहाय ग्रंथावली, खंड 4, पृष्ठ 149
5 शिवपूजन सहाय ग्रंथावली, खंड 4, पृष्ठ 151
6 बच्चन सिंह, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ 390
7 शिवपूजन सहाय ग्रंथावली, खंड 4, पृष्ठ 153
8 धीरेंद्र वर्मा, हिंदी साहित्य कोश, भाग 2, ज्ञानमंडल, वाराणसी, 2013, पृष्ठ 593
9 शिवपूजन सहाय ग्रंथावली, खंड 4, पृष्ठ 154
10 शिवपूजन सहाय ग्रंथावली, खंड 4, पृष्ठ 156
11 शिवपूजन सहाय ग्रंथावली, खंड 4, पृष्ठ 157
12 शिवपूजन सहाय ग्रंथावली, खंड 4, पृष्ठ 174
13 शिवपूजन सहाय ग्रंथावली, खंड 4, पृष्ठ 176
14 शिवपूजन सहाय ग्रंथावली, खंड 4, पृष्ठ 179
15 शिवपूजन सहाय ग्रंथावली, खंड 4, पृष्ठ 179
16 शिवपूजन सहाय ग्रंथावली, खंड 4, पृष्ठ 180
17 शिवपूजन सहाय ग्रंथावली, खंड 4, पृष्ठ 181
18 शिवपूजन सहाय ग्रंथावली, खंड 4, पृष्ठ 183
19 शिवपूजन सहाय ग्रंथावली, खंड 4, पृष्ठ 162
20 शिवपूजन सहाय ग्रंथावली, खंड 4, पृष्ठ 163
21 गणपति चंद्र गुप्त, हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, द्वितीय खंड, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1998, पृष्ठ 356
22 शिवपूजन सहाय ग्रंथावली, खंड 4, पृष्ठ 165
23 शिवपूजन सहाय ग्रंथावली, खंड 4, पृष्ठ 168–169
24 शिवपूजन सहाय ग्रंथावली, खंड 4, पृष्ठ 169
25 शिवपूजन सहाय ग्रंथावली, खंड 4, पृष्ठ 138

हिन्दी विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया
विश्वविद्यालय, उदयपुर–313001
मो0–09828351618

185